क्या मैं उड़ा था?

कृष्ण कुमार

जून का दूसरा हफ्ता चल रहा था। हम लोग छत पर सोते थे। खाटें लादकर ऊपर ले जाना कठिन था, इसलिए ज़मीन पर ही बिस्तर बिछा लेते थे। रोज़ यह डर रहता कि बारिश होगी और नीचे आना पड़ेगा। एक दिन हल्की-सी बूँदा-बाँदी हुई और हम लोगों ने तुरन्त अपने बिस्तर गोल करके धड़ाम-से नीचे आँगन में फेंक दिए। पाँच मिनट में बूँदा-बाँदी बन्द हो गई लेकिन हम लोग फिर से ऊपर नहीं गए, नीचे की गर्मी और मच्छरों के हमले सहते रहे। ऊपर जाते तो फिर पानी का डर लगता। डर से हमला भला!

अगले दिन आसमान साफ था, इसलिए बिस्तर फिर से ऊपर पहुँच गए। नन्हा-सा चाँद निकला हुआ था और बहुत मज़ेदार हवा बह रही थी। ज़रा-सी देर में अम्मा और पिताजी खर्राटे भरने लगे। मैं भी थोड़ी देर तक चादर में उलट-पुलट होने के बाद सो गया।

मालूम नहीं, मुझे सोए कितनी देर बीत चुकी होगी जब मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा! पहले तो मैं समझ न पाया कि नींद किस वजह से खुली। फिर मैंने आँखें मलीं तो देखा, चाँदनी की जगह हल्का-हल्का अँधेरा छाया था। मैं समझ गया कि

बादल घिर आए हैं। साथ ही, मैंने पाया कि हवा बहुत तेज़ चल रही थी। पर तब भी मैं यह अन्दाज़ नहीं लगा पाया कि मेरी नींद क्यों खुली थी। पिताजी और अम्मा पहले की तरह खर्राटे ले रहे थे।

तभी मेरा ध्यान सामने की ओर गया। अँधेरे में छत से कुछ ऊँचाई पर एक सफेद-सी चीज़ मुझे हवा में उड़ती हुई दिखाई दी। उसे देखकर पहले तो मैं एकदम घबरा गया। पत्रिकाओं में पढ़े हुए भूत-प्रेतों और मरे हुए लोगों की आत्माओं के किस्से मेरे मन में कौंध गए। मेरा इनमें रत्तीभर विश्वास न था, पर यह समझना भी मेरे लिए बहुत कठिन था कि जो कुछ सामने उड़ रहा है, वह भूत नहीं तो क्या है!

मैंने अँधेरे में अपनी आँखें गड़ाईं और यह करते-करते मैं लगभग खड़ा हो गया। खड़े होकर मैं उस उड़ती हुई चीज़ को कुछ अच्छी तरह देख सका और मैंने पाया कि वह मेरी चादर थी जिसे तेज़ हवा उड़ा ले गई थी। मुझे ऐसा लगा, जैसे किसी ने मुझे एक झापड़ रसीद किया हो! मैंने तुरन्त तय किया कि मुझे किसी-न-किसी तरह चादर वापस लानी होगी, और वह भी अम्मा और पिताजी के जागने से पहले।

हमारे घर के बगल में एक नीम का पेड़ था – बहुत पुराना और बहुत ऊँचा। उसकी एक मोटी डाल हमारे मकान की छत के पास से गुज़रती थी। छत की मुँडेर पर खड़े होकर इस डाल को पकड़ना मुश्किल काम नहीं था। मैं अक्सर उस पर चढ़कर अम्मा के लिए दातुन तोड़कर लाता था। मेरे मन में आया कि इस वक्त नीम पर चढ़कर हवा में उड़ती चादर को पकड़ा जा सकता है।

दबे कदमों से मुँडेर के पास पहुँचकर मैं उस पर चढ़ गया। मैंने हाथ फैलाए और डाल से चिपट गया। फिर चुपचाप, लेकिन तेज़ी-से, एक शाखा से दूसरी शाखा पर रेंगता हुआ मैं नीम की सबसे ऊँची डाल पर जा पहुँचा। पेड़ पर चढ़ने की उतावली में मैंने अभी तक एक बार भी ऊपर नहीं देखा था। अब सबसे ऊँची डाल पर खड़े होकर मैंने अँधेरे में चादर को ढूँढ़ने की कोशिश की।

मैंने देखा कि तेज़ हवा के कारण मेरी चादर अब तक नीम से काफी आगे निकल गई थी। नीम पर खड़े होकर उसे पकड़ना तो दूर, ठीक-ठीक देख पाना भी मुश्किल था।

निराश होकर मैं पेड़ से नीचे उतरने लगा। लेकिन अब छत पर वापस जाने का सवाल न था। चादर का पीछा मुझे करना ही था, चाहे उसे पकड़ पाने की कोई तरकीब और उम्मीद मुझे नहीं दिख रही थी। जो भी हो, बिस्तर पर लेटकर यह जानते हुए सो सकना असम्भव था कि मेरी चादर हवा में दूर कहीं उड़ रही है।

नीम के मोटे तने पर से रपटता

हुआ मैं नीचे पहुँच गया। सामने गली थी जिसके पार सड़क थी। सड़क पर आकर मैंने देखा कि चादर मुझसे करीब सौ कदम के फासले पर उड़ रही थी।

इस समय होशियारी की एक बात मेरे मन में आई। वह यह कि चादर का पीछा करने से पहले मुझे उसके उड़ने की दिशा का पता लगाना चाहिए। वह जिधर को उड़ रही हो, उसी तरफ दौड़कर उससे कुछ आगे बढ़कर उसे पकड़ा जा सकता था।

मैंने गर्दन मोड़कर पहले नीम को देखा, फिर चादर को, और हिसाब लगाया कि यदि मैं दौड़कर सामने वाले चौराहे पर पहुँच जाऊँ और वहाँ लगे बिजली के खम्भे पर चढ़ जाऊँ तो चादर मेरी पकड़ में आ सकती है। उस समय मुझे यह ध्यान नहीं आया कि बिजली के खम्भे पर चढ़ना कितना खतरनाक हो सकता है, जैसा कि पिताजी मुझे अक्सर बताया करते थे।

मैं भागा और सीधा चौराहे पर पहुँचकर रुका। दिनभर वहाँ रौनक रहती थी, पर इस समय कोई न था। अचानक मेरे कानों में 'ठक्-ठक्' की आवाज़ आई। मैंने नज़र दौड़ाई तो देखा कि दाहिनी सड़क पर लाठी और सीटी लिए चौकीदार चल रहा था। मेरी आहट पाकर वह दूर से ही बोला, "इस वक्त यहाँ क्या कर रहे हो?"

यह और बला आई, मैंने सोचा। कुछ और छिपाने की ज़रूरत न देखकर साफ कह दिया, "मेरी चादर उड़ गई है। उसे पकड़ने निकला हूँ।"

चौकीदार ऊपर की तरफ गर्दन

किए मेरी ओर बढ़ा और बोला, "गज़ब हो गया! पर अब मिलेगी नहीं।"

"मैं लाकर रहूँगा," मैंने कहा और चादर की ओर निगाह डाली। वह चौराहे से काफी आगे बढ़ चुकी थी, इसलिए मेरा अब वहाँ खड़ा रहना बेकार था। मैं सामने वाली सड़क पर भागा और मुश्किल से दो मिनट में चादर से कुछ आगे निकल गया। मेरे ठीक सामने बिजली का एक खम्भा था। मैं फुर्ती से हाथ बढ़ाते हुए उस पर चढ़ने लगा। मैं इतनी तेज़ी-से चढ़ रहा था कि आधे मिनट में मेरे बाल बिजली के तारों से छू जाते। तब मेरी क्या हालत होती, यह बताना बेकार है। गनीमत हुई कि आधी ऊँचाई तक चढ़ने के बाद मेरा ध्यान अपने आप चादर की ओर चला गया। मैंने देखा कि खम्भे के ऊपर पहुँचने से पहले ही चादर ने अपना रास्ता बदल दिया था।

एक बार फिर निराश होकर मैं खम्भे से नीचे उतरा। नीचे आकर मैंने चादर को एक बार और देखा। मैंने पाया कि वह न केवल अपना रास्ता बदल चुकी थी, बल्कि हवा की रफ्तार बढ़ जाने से अधिक ऊँचाई पर उड़ने लगी थी

क्या मैं भी इतनी ऊँचाई पर पहुँच सकूँगा? इतनी ऊँची तो शायद ही कोई चीज़ हो जो मुझे चादर तक पहुँचा सके। यदि उड़ सकता तो आज यह नौबत न आती। उड़ता नहीं भी, यदि मैं इतना उछल सकता तो काम चल जाता। इस तरह के विचारों में उड़ते-उड़ते मैंने अपनी बाँहें चादर की तरफ बढ़ा दीं।

अब मैं वह कैसे लिखूँ जो मैं बताना चाहता हूँ? जो हुआ, वही लिख दूँ तो सब कहेंगे – 'झूठ है, झूठ है'। जो नहीं हुआ, वह लिखूँ तो झूठ होगा ही। खैर, दूसरे जो भी कहें, जो हुआ, वही लिखे देता हूँ।

और हुआ यह कि बाँहें चादर की

तरफ बढ़ाते ही मेरे पैर थिरकने लगे। पलक झपकते ही मैंने देखा कि मेरी उँगलियाँ चादर को छू रही थीं। अगले ही क्षण मैं चादर में लिपटा हुआ खड़ा था।

अब जल्दी-से-जल्दी घर पहुँचने के सिवा मुझे कोई काम न था। इसलिए मैं भागा। मेरे चारों तरफ चादर लिपटी होने के कारण मुझे दौड़ने में कठिनाई हो रही थी, पर इतनी फ़ुर्सत मुझे कहाँ थी कि रुककर चादर उतारता!

मैं सीधे घर पहुँचता, पर मुझे रास्ते में रुकना पड़ा। चौराहे से गुज़रते समय चौकीदार की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी, "क्या तुम उड़े थे?"

मैं बातों में उलझना नहीं चाहता था, इसलिए मैंने दौड़ते-दौड़ते जवाब दिया, "नहीं, नहीं, वह अपने-आप उतर आई।" मैं निकल जाता लेकिन चौकीदार ने हाथ बढ़ाकर मुझे रोक लिया और कहा, "मैंने तुम्हें उड़ते देखा है। मुझे भी सिखा दो।"

उसकी बात सुनकर मेरा गला सूख गया। अगर उसने सचमुच मुझे उड़ते देखा था तो वह किसी तरह मेरी बात नहीं मानेगा, मैंने सोचा। मुझे खुद नहीं मालूम था कि मैं उड़ा था या सिर्फ उछला था। अब एक ही तरीका था जान छुड़ाने का और मैंने वही अपनाया।

"अभी मुझे नींद आ रही है। तुम सवेरे घर आना।" मैंने कहा।

चौकीदार ने खुश होकर अपना हाथ हटाया और मैं फिर भागने लगा।

घर की गली में घुसते ही दो कुत्ते मुझे देखकर भौंकने लगे और मैं उनकी परवाह न करके नीम पर चढ़ गया और मुँडेर पर पाँव रखकर वापस बिस्तर में घुसकर सो गया।

सबेरा होने पर मैं बहुत परेशान था। रात वाली बात किसी से बताते न बनती थी, लेकिन कुछ ही देर में चौकीदार आने वाला था!

कृष्ण कुमार: प्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं लेखक। शिक्षा के मुद्दों पर सतत चिन्तन एवं लेखन। दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षा के प्रोफेसर और एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक रह चुके हैं। भारत और पाकिस्तान में शिक्षा पर उनकी दो पुस्तकें, *मेरा देश तुम्हारा देश* और *शान्ति का समर* चर्चित रही हैं। उनकी अन्य पुस्तकों में *शिक्षा और ज्ञान*, *चूड़ी बाज़ार में लड़की* और बच्चों के लिए *पूड़ियों की गठरी* शामिल हैं।

सभी चित्र: शैलेश गुप्ता: आर्किटेक्ट और चित्रकार जो आज भी बचपन को संजोए रखना चाहते हैं। एमआईटीएस, ग्वालियर से आर्किटेक्चर की पढ़ाई। कहानियाँ सुनने और सुनाने का शौक है। भोपाल में रहते हैं।

यह कहानी राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कृष्ण कुमार के कहानी संग्रह *आज नहीं पढ़ूँगा* से ली गई है।